आकुल अंतर

सन् १९४०-४२ में

लिखित

बच्चन की अन्य रचनाएँ

१ एकांत संगीत—

एक सौ गीतों का संग्रह

२ निशा निमंत्रण—

एक सौ गीतों का संग्रह

३ मधुकलश—

लंबी कविताओं का संग्रह

४ मधुबाला—

लंबी कविताओं का संग्रह

५ मधुशाला—

रुबाइयों का संग्रह

६ ख़ैयाम की मधुशाला—

रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यानुवाद

७ तेरा हार—

प्रारंभिक कविताओं का संग्रह

इनके विषय में विशेष जानकारी के लिए पुस्तक के अंत में देखिए।

आकुल अंतर

बच्चन

ग्रंथ-संख्या—९७

प्रकाशक तथा विक्रेता
भारती-भण्डार
लीडर प्रेस,
इलाहाबाद

पहला संस्करण
सं० '९९,
मूल्य १॥)

मुद्रक
कृष्णाराम मेहता
लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

विज्ञापन

आज बच्चन की नवीनतम रचना 'आकुल अतर' उनकी कविता के प्रेमियों के आगे उपस्थित करते समय हमें बहुत प्रसन्नता हो रही है। 'एकात सगीत' के पश्चात उनकी रचनाएँ 'आकुल अतर' और 'विकल विश्व' दो मालाओं में पत्र पत्रिकाओं में प्रकाशित होती रही हैं। उनके द्वारा उन्होंने आतरिक और बाह्य अशाति, विह्वलता और विक्षुब्धता को वाणी देने का प्रयत्न किया है। प्रस्तुत सग्रह में प्रथम श्रेणी की ७१ कविताएँ सगृहीत हैं।

बच्चन अपने काव्य जीवन की प्रगति में किसी स्थान पर ठहरे नहीं। उनकी प्रत्येक रचना उनके मानसिक विकास का एक चिह्न है। 'आकुल अतर' उनकी पिछली रचना 'एकात सगीत' के ऊपर एक नई सीढी है। 'एकात सगीत' की अतिम कविता थी 'कितना अकेला आज मे'। 'आकुल अतर' की अतिम रचना है 'तू एकाकी तो गुनहगार'। केवल यही दो पक्तियाँ यह बतलाने के लिए पर्याप्त है कि कवि ने कितनी मजिल पार कर ली है?

कवि ने 'निशा निमत्रण' के साथ गीतों की एक नई शैली चलाई थी। 'एकात सगीन' में उसके रूप में कुछ परिवर्तन तो अवश्य हुआ

परंतु ढाँचा करीब करीब वही रहा। इस संग्रह में भाव और विचारों में परिवर्तन होने के साथ गीतों के रूप में भी भारी परिवर्तन हुआ है। छंद और तुकों के बंधन से मुक्त होकर कितने ही गीत केवल लय के बल पर लिखे गए हैं। यह परिवर्तन कहाँ तक कविता की आंतरिक आवश्यकता के कारण लाए गए हैं इसे विचारवान पाठक स्वयं देख लेंगे। बच्चन की कविता के प्रेमी उनके भावों और उनके प्रकट करने के माध्यम का जो अटूट संबंध उनकी पुरानी रचनाओं में पाते रहे हैं उसे वे यहाँ भी पाएँगे। कवि की इस कृति का उनकी रचनाओं में अथवा अन्य सामयिक रचनाओं में क्या स्थान होगा इसका निर्णय तो समालोचक गण करेंगे, समय करेगा। हम यहाँ केवल इतना ही कहना चाहते हैं कि भावों के प्रति ईमानदारी जो कवि की एक अपनी विशेषता हो गई है आपको यहाँ भी वैसी ही मिलेगी जैसी अन्य किसी रचना में। 'आकुल अंतर' एक आकुल अंतर का प्रतिबिंब है।

हमें एक बात की प्रसन्नता और है कि 'आकुल अंतर' के अतिरिक्त हम बच्चन की सभी पिछली रचनाओं का नवीन संस्करण नए रूप में शीघ्र ही प्रकाशित कर रहे हैं। उनकी कई पिछली रचनाएँ बहुत दिनों से अप्राप्य थीं और पाठकों को निराश होना पड़ता था। अब उनकी समस्त रचनाएँ, एक ही आकार-प्रकार में एक ही स्थान से प्राप्त हो सकेंगी।

कागज और छपाई का दाम जैसा दिन दूना रात चौगुना बढ़ रहा है वह पुस्तकों के बाजार से परिचित किसी व्यक्ति से छिपा नहीं है।

इसी लिए पुस्तकों के मूल्य में हमें कुछ वृद्धि करनी पड़ी है। हमें विश्वास है कि इस स्वल्प मूल्य वृद्धि के कारण बच्चन की पुस्तकों की लोकप्रियता में कोई कमी न होगी और लोग उन्हें उसी भाव से अपनायेंगे जैसे अब तक करते आए हैं।

—प्रकाशक

सूची

आकुल अतर के गीत . पृष्ठ सख्या

आकुल अतर के गीत

आकुल अंतर

१

लहर सागर का नही शृगार,
उसकी विकलता है,
अनिल अबर का नही खिलवार,
उसकी विकलता है,
विविध रूपों मे हुआ साकार,
रगों से सुरजित,
मृत्तिका का यह नहीं ससार
उसकी विकलता है।

गध कलिका का नहीं उद्गार,
उसकी विकलता है,
फूल मधुवन का नहीं गलहार,
उसकी विकलता है,
कोकिला का कौन-सा व्यवहार
ऋतुपति को न भाया?
कूक कोयल की नहीं मनुहार,
उसकी विकलता है।

गान गायक का नहीं व्यापार,
उसकी विकलता है,
राग वीणा की नहीं झंकार,
उसकी विकलता है,
भावनाओं का मधुर आधार
साँसों से विनिर्मित,
गीत कवि-उर का नहीं उपहार,
उसकी विकलता है।

—

२

मेरे साथ अत्याचार।

प्यालियाँ अगणित रसों की
सामने रख राह रोकी,
पहुँचने दी अधर तक बस आँसुओं की धार।
मेरे साथ अत्याचार।

भावना अगणित हृदय में,
कामना अगणित हृदय में,
आह को ही बस निकलने का दिया अधिकार।
मेरे साथ अत्याचार।

हर नहीं तुमने लिया क्या,
तज नहीं मैंने दिया क्या,
हाय, मेरी विपुल निधि का गीत बस प्रतिकार।
मेरे साथ अत्याचार।

३

बदला ले लो, सुख की घड़ियो!

सौ-सौ तीखे काँटे आए
फिर-फिर चुभने तन मे मेरे!
था ज्ञात मुझे यह होना है क्षण-भंगुर स्वप्निल फुलझड़ियो!
बदला ले लो सुख की घड़ियो!

उस दिन सपना की झाँकी मे
मैं क्षण भर तो मुसकाया था,
मत टूटो अब तुम युग-युग तक, हे खारे आँसू की लड़ियो!
बदला ले लो सुख की घड़ियो!

मैं कंचन की जंजीर पहन
क्षण भर सपने मे नाचा था,
अधिकार, सदा को तुम जकड़ो मुझको लोहे की हथकड़ियो!
बदला ले लो सुख की घड़ियो!

४

कैसे आँसू नयन सँभाले।

मेरी हर आशा पर पानी,
रोना दुर्बलता, नादानी,
उमडे दिल के आगे पलके कैसे बाँध बनाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

समझा था जिसने मुझको सब,
समझाने को वह न रही अब,
समझाते मुझको हे मुझको कुछ न समझनेवाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

मन मे था जीवन मे आते
वे, जो दुर्बलता दुलराते,
मिले मुझे दुर्बलताओं से लाभ उठानेवाले।
कैसे आँसू नयन सँभाले।

५

आज आहत मान, आहत प्राण !

कल जिसे समझा कि मेरा
मुकुर - बिंबित रूप,
आज वह ऐसा, कभी की हो न ज्यों पहचान।
आज आहत मान, आहत प्राण !

'मैं तुझे देता रहा हूँ
प्यार का उपहार',
'मूर्ख मैं तुझको बनाती थी निपट नादान।'
आज आहत मान, आहत प्राण !

चोट दुनिया-दैव की सह
गर्व था, मैं वीर,
हाय, ओडे थे न मैंने शब्द-वेधी-बाण।
आज आहत मान, आहत प्राण !

६

जानकर अनजान बन जा।

पूछ मत आराध्य कैसा,
जबकि पूजा-भाव उमडा,
मृत्तिका के पिंड से कहदे कि तू भगवान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

आरती बनकर जला तू,
पथ मिला, मिट्टी सिधारी,
कल्पना की वंचना से सत्य से अज्ञान बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

किंतु दिल की आग का
संसार में उपहास कब तक?
किंतु होना, हाय, अपने आप
हतविश्वास कब तक?
अग्नि को अंदर छिपाकर, हे हृदय, पाषाण बन जा।
जानकर अनजान बन जा।

७

कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

क्या तुम लाई हो चितवन मे,
क्या तुम लाई हो चुबन मे,
अपने कर मे क्या तुम लाई,
क्या तुम लाई अपने मन मे,
क्या तुम नूतन लाई जो मैं
फिर से बधन झेलूँ ?
कैसे भेट तुम्हारी ले लूँ

अश्रु पुराने, आह पुरानी,
युग बाहों की चाह पुरानी,
उथले मन की थाह पुरानी,
वही प्रणय की राह पुरानी,
अर्घ्य प्रणय का कैसे अपनी
अनज्वाला मे लूँ ?
कैसे भेट तुम्हारी ले लूँ ।

[आकुल अंतर

खेल चुका मिट्टी के घर से,
खेल चुका मैं सिंधु लहर से,
नभ के सूनेपन से खेला,
खेला झंझा के झर-झर से,
तुम में आग नहीं है तब क्या
संग तुम्हारे खेलूँ ?
कैसे भेंट तुम्हारी ले लूँ ?

८

मैंने ऐसी दुनिया जानी।

इस जगती के रंगमंच पर
आऊँ मैं कैसे, क्या बनकर,
जाऊँ मैं कैसे क्या बन कर—
सोचा, यत्न किया भी जी भर,
किंतु कराती नियति नटी है
मुझसे बस मनमानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

आज मिले दो यही प्रणय है,
दो देहों में एक हृदय है,
एक प्राण है, एक श्वास है,
भूल गया मैं यह अभिनय है,
सबसे बढ़कर मेरे जीवन
की थी यह नादानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

[आकुल अंतर

यह लो मेरा क्रीडास्थल है,
यह लो मेरा रग-महल है,
यह लो अतरहित मरुथल है,
ज्ञात नहीं क्या अगले पल है,
निश्चित पटाक्षेप की घटिका
भी तो है अनजानी।
मैंने ऐसी दुनिया जानी।

९

क्षीण कितना शब्द का आधार !

मौन तुम थीं, मौन मैं था, मौन जग था,
तुम अलग थीं और मैं तुम से अलग था,
जोड़-से हमको गए थे शब्द के कुछ तार।
क्षीण कितना शब्द का आधार !

शब्दमय तुम और मैं जग शब्द से भर पूर,
दूर तुम हो और मैं हूँ आज तुम से दूर,
अब हमारे बीच में है शब्द की दीवार।
क्षीण कितना शब्द का आधार !

कौन आया और किसके पास कितना,
मैं करूँ अब शब्द पर विश्वास कितना,
कर रहे थे जो हमारे बीच छल-व्यापार !
क्षीण कितना शब्द का आधार !

१०

मैं अपने से पूछा करता।

निर्मल तन, निर्मल मनवाली,
सीधी-सादी, भोली-भाली,
वह एक अकेली मेरी थी, दुनिया क्यों अपनी लगती थी?
मैं अपने से पूछा करता।

तन था जगती का सत्य सघन,
मन था जगती का स्वप्न गहन,
सुख-दुख, जगती का हास-रुदन,
मैंने था व्यक्ति जिसे समझा, क्या उसमें सारी जगती थी?
मैं अपने से पूछा करता।

वह चली गई, जग मे क्या कम,
दुनिया रहती दुनिया हरदम,
मैं उसको धोखा देता था अथवा वह मुझको ठगती थी?
मैं अपने से पूछा करता।

११

अरे है वह अतस्तल कहाँ ?

अपने जीवन का शुभ-सुदर
बाँटा करता हूँ मैं घर-घर,
एक जगह ऐसी भी होती,
निःसकोच विकार-विकृति निज सब रख सकता जहाँ ?'
अरे है वह अतस्तल कहाँ ?

करते कितने सर-सरि-निर्झर
मुखरित मेरे आँसू का स्वर,
एक उदधि ऐसा भी होता,
होता गिरकर लीन सदा को नयनो का जल जहाँ।
अरे है वह अतस्तल कहाँ ?

जगती के विस्तृत कानन में
कहाँ नहीं भय औ' किस क्षण में ?
एक बिंदु ऐसा भी होता,
जहाँ पहुँचकर कह सकता मैं, 'सदा सुरक्षित यहाँ'।
अरे है वह अतस्तल कहाँ ?

१२

अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

ऊँची ग्रीवा रख आजीवन
चलने का लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है,
क्षण भर को वह ठौर झुका दूँ गर्दन अपनी जहाँ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

ऊँचा मस्तक रख आजीवन
चलने का लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है,
क्षण भर को वह ठौर टिका दूँ मत्था अपना जहाँ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

कभी करूँगा नहीं पलायन
जीवन से, लेकर के भी प्रण
मन मेरा खोजा करता है,
क्षण भर को वह ठौर छिपा लूँ अपना शीश जहाँ।
अरे है वह वक्षस्थल कहाँ ?

१३

अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन एक समर है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
योद्धा भी खोजा करता है,
कुछ पल को वह ठौर युद्ध की प्रतिध्वनि नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन एक सफर है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
यात्री भी खोजा करता है,
कुछ पल को वह ठौर प्रगति यात्रा की नहीं जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

जीवन, एक गीत है सचमुच,
पर इसके अतिरिक्त बहुत कुछ,
गायक भी खोजा करता है,
कुछ पल को वह ठौर मूकता भग न होती जहाँ।
अरे है वह शरणस्थल कहाँ ?

१४

क्या है मेरी बारी मे।

जिसे सींचना था मधुजल से
सींचा खारे पानी से,
नहीं उपजता कुछ भी ऐसी विधि से जीवन-क्यारी मे।
क्या है मेरी बारी मे।

आँसू-जल से सींच-सींचकर
वेलि विवश हो बोता हूँ,
स्रष्टा का क्या अर्थ छिपा है मेरी इस लाचारी मे।
क्या है मेरी बारी में।

टूट पडे मधुऋतु मधुवन मे
कल ही तो क्या मेरा है,
जीवन बीत गया सब मेरा जीने को तैयारी मे।
क्या है मेरी बारी मे।

१५

मैं समय बर्बाद करता ?

प्रायशः हित-मित्र मेरे
पास आ सच्चा सवेरे,
हो परम गंभीर कहते—मैं समय बर्बाद करता !
मैं समय बर्बाद करता ?

बात कुछ विपरीत ही है,
सूझता उनको नहीं है,
जो कि कहते आँख रहते—मैं समय बर्बाद करता !
मैं समय बर्बाद करता ?

काश मुझमें शक्ति होती
नष्ट कर सकता समय को,
औ' समय के बंधनों से
मुक्त कर सकता हृदय को,
भर गया दिल जुल्म सहते—मैं समय बर्बाद करता ।
मैं समय बर्बाद करता ।

१६

आज ही आना तुम्हे था ?

आज मैं पहले पहल कुछ
घूँट मधु पीने चला था,
पास मेरे आज ही क्यों विश्व आ जाना तुम्हे था।
आज ही आना तुम्हे था ?

एक युग से पी रहा था
रक्त मैं अपने हृदय का,
किंतु मद्यप रूप में ही क्या मुझे पाना तुम्हे था।
आज ही आना तुम्हे था ?

तुम बड़े नाजुक समय में
मानवों को हो पकड़ते,
हे नियति के व्यंग, मैंने क्या न पहचाना तुम्हे था।
आज ही आना तुम्हे था ?

१७

एकाकीपन भी तो न मिला।

मैंने समझा था सगरहित
जीवन के पथ पर जाता हूँ,
मेरे प्रति पद की गति-विधि को जग देख रहा था खोल नयन।
एकाकीपन भी तो न मिला।

मैं अपने कमरे के अंदर
कुछ अपने मन की करता था,
दर - दीवारें चुपके - चुपके देती थीं जग को आमन्त्रण।
एकाकीपन भी तो न मिला।

मैं अपने मानस के भीतर
था व्यस्त मनन में, चिंतन में,
साँसें जग से कह आती थीं मेरे अंतर का द्वन्द्व-दहन।
एकाकीपन भी तो न मिला।

१८

नई यह कोई बात नहीं।

कल केवल मिट्टी की ढेरी,
आज 'महत्ता' इतनी मेरी,
जगह-जगह मेरे जीवन की जाती बात कही।
नई यह कोई बात नहीं।

सत्य कहे या झूठ बनाए,
भला-बुरा जो जी में आए,
सुनते हैं क्यों लोग—पहेली मेरे लिए रही।
नई यह कोई बात नहीं।

कवि था कविता से था नाता,
मुझको संग उसी का भाता,
किंतु भाग्य ही कुछ ऐसा है,
फेर नहीं मैं उसको पाता,
जहाँ कहीं मैं गया कहानी मेरे साथ रही।
नई यह कोई बात नहीं।

———

१६

तिल में किसने ताड छिपाया ?

छिपा हुआ था जो कोने में,
शका थी जिसके होने में,
वह बादल का टुकडा फैला
फैल समग्र गगन में छाया।
तिल में किसने ताड छिपाया ?

पलकों के सहसा गिरने पर
धीमे से जो बिंदु गए झर,
मैंने कब समझा था उनके
अदर सारा सिंधु समाया।
तिल में किसने ताड छिपाया ?

कर बैठा था जो अनजाने,
या कि करा दी थी स्रष्टा ने,
उस गलती ने मेरे सारे
जीवन का इतिहास बनाया।
तिल में किसने ताड छिपाया ?

२०

कवि तू जा व्यथा यह झेल ।

वेदना आई शरण मे
गीत ले गीले नयन मे,
क्या इसे निज द्वार से तू आज देगा ठेल ।
कवि तू जा व्यथा यह झेल ।

पोंछ इसके अश्रुकण को,
अश्रुकण - सिंचित वदन को,
यह दुखी कब चाहती है कलित क्रीडा-केलि ।
कवि तू जा व्यथा यह झेल ।

है कहीं कोई न इसका,
यह पकड ले हाथ जिसका,
और तू भी आज किसका,
है किसी सयोग से ही हो गया यह मेल ।
कवि तू जा व्यथा यह झेल ।

—

२१

मुझको भी ससार मिला है।

जिन्हे पुतलियाँ प्रतिपल सेती,
जिन पर पलकें पहरा देतीं,
ऐसी मोती की लडियों का मुझको भी उपहार मिला है॥
मुझको भी ससार मिला है।

मेरे सूनेपन के अदर
हैं कितने मुझ-से नारी-नर!
जिन्हें सुखों ने ठुकराया है मुझको उनका प्यार मिला है।
मुझको भी ससार मिला है।

इससे सुदर तन है किसका?
इससे सुदर मन है किसका?
मैं कवि हूँ मुझको वाणी के तन-मन पर अधिकार मिला है।
मुझको भी ससार मिला है।

२२

वह नभ कंपनकारी समीर,

जिसने बादल की चादर को
दो झटके में कर तार-तार,
दृढ़ गिरि शृंगा की शिला हिला,
डाले अनगिन तरुवर उखाड़,
होता समाप्त अब वह समीर
कलि की मुसकानों पर मलीन !
वह नभ कंपनकारी समीर ।

वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर,
जिसने क्षिति के वक्षस्थल को
निज तेज धार से दिया चीर,
कर दिए अनगिनत नगर-ग्राम—
घर बेनिशान कर मग्न-नीर,
होता समाप्त अब वह प्रवाह
तट-शिला-खंड पर क्षीण-क्षीण !
वह जल प्रवाह उद्धत-अधीर ।

मेरे मानस की महा पीर,
जो चली विधाता के सिर पर
गिरने को बनकर वज्र शाप,
जो चली भस्म कर देने को
यह निखिल सृष्टि बन प्रलय ताप,
होती समाप्त अब वही पीर,
लघु-लघु गीतों में शक्तिहीन !
मेरे मानस की महापीर

२३

तूने अभी नहीं दुख पाए।

शूल चुभा, तू चिल्लाता है,
पाँव सिद्ध तब कहलाता है,
इतने शूल चुभे शूलों के चुभने का पग पता न पाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

बीते सुख की याद सताती?
अभी बहुत कोमल है छाती,
दुख तो वह है जिसे सहन कर पत्थर की छाती हो जाए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

कंठ करुण स्वर में गाता है,
नयन में घन घिर आता है,
पन्ना-पन्ना रँग जाता है,
लेकिन, प्यारे, दुख तो वह है,
हाथ न डोले, कंठ न बोले, नयन मुँदे हों या पथराए।
तूने अभी नहीं दुख पाए।

२४

ठहरा-सा लगता है जीवन ।

एक ही तरह से घटनाएँ
नयनों के आगे आती हैं,
एक ही तरह के भावों को
दिल के अंदर उपजाती हैं,
एक ही तरह से आह उठा,
आँसू बरसा,
हल्का हो जाया करता मन ।
ठहरा सा लगता है जीवन ।

एक ही तरह की तान कान
के अंदर गूँजा करती है,
एक ही तरह की पंक्ति पृष्ठ
के ऊपर नित्य उभरती है,
एक ही तरह के गीत बना,
सूने में गा,
हल्का हो जाया करता मन ।
ठहरा-सा लगता है जीवन ।

२५

हाय, क्या जीवन यही था।

एक बिजली की झलक मे
स्वप्न औ' रस-रूप दीखा,
हाथ फैले तो मुझे निज हाथ भी दिखता नही था।
हाय, क्या जीवन यही था।

एक झोके ने गगन के
तारको मे जा बिठाया,
मुट्ठियाँ खोली सिवा कुछ ककडो के कुछ नहीं था।
हाय, क्या जीवन यही था।

मै पुलक उठता न सुख से
दु:ख से तो क्षुब्ध होता,
इस तरह निर्लिप्त होना लक्ष्य तो मेरा नही था।
हाय, क्या जीवन यही था।

२६

लो दिन बीता, लो रात गई।

सूरज ढलकर पच्छिम पहुँचा,
डूबा, संध्या आई, छाई,
सौ संध्या सी वह संध्या थी,
क्यों उठते-उठते सोचा था, दिन में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

धीमे - धीमे तारे निकले,
धीरे - धीरे नभ में फैले,
सौ रजनी सी वह रजनी थी
क्यों संध्या को यह सोचा था, निशि में होगी कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

चिड़ियाँ चहकीं, कलियाँ महकीं,
पूरब से फिर सूरज निकला,
जैसे होती थी सुबह हुई,
क्यों सोते-सोते सोचा था, होगी प्रात: कुछ बात नई।
लो दिन बीता, लो रात गई।

२७

छल गया जीवन मुझे भी।

देखने में था अमृत वह,
हाथ मे आ मधु गया रह,
और जिह्वा पर हलाहल! विश्व का वचन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

गीत मे जगती न झूमी,
चीख से दुनिया न घूमी,
हाय, लगते एक से अब गान औ' क्रंदन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

जो द्रवित होता न दुख से,
जो स्रवित होता न सुख से,
श्वास-क्रम से किंतु शापित कर गया पाहन मुझे भी।
छल गया जीवन मुझे भी।

वह साल गया, यह साल चला ।

मित्रों ने वर्ष - वधाई दी,
मित्रों को हर्ष - वधाई दी,
उत्तर भेजा, उत्तर आया,
'नूतन प्रकाश' 'नूतन प्रभात' इत्यादि शब्द कुछ दिन गूँजे,
फिर मंद पड़े, फिर लुप्त हुए,
फिर अपनी गति से काल चला,
वह साल गया, यह साल चला ।

आनेवाला 'कल' 'आज' हुआ,
जो 'आज' हुआ 'कल' कहलाया,
पृथ्वी पर नाचे रात - दिवस,
नभ में नाचे रवि-शशि-तारे, निश्चित गति रखकर बेचारे ।
यह मास गया, वह मास गया,
ऋतु-ऋतु बदली, मौसम बदला,
वह साल गया, यह साल चला ।

झझा-सनसन, घन घन-गर्जन ,
कोकिल - कूजन, केकी - क्रदन ,
अखबारी दुनिया की हलचल ,
-सग्राम-सधि, दगा-फसाद, व्याख्यान, विविध चर्चा विवाद ,
हम-तुम यह कहकर भूल गए ,
यह बुरा हुआ, यह हुआ भला ,
वह साल गया, यह साल चला ।

२६

यदि जीवन पुनः बना पाता ।

मैं करता चकनाचूर न जग का
दुख - संकटमय यंत्र पकड़,
बस कुछ क्षण के परिवर्तन से क्षण में क्या से क्या हो जाता ।
यदि जीवन पुनः बना पाता ।

मैं करता टुकड़े - टुकड़े क्यों
युग-युग की चिर-संबद्ध लड़ी,
केवल कुछ पल को अदल-बदल जीवन क्या से क्या हो जाता ।
यदि जीवन पुनः बना पाता ।

जो सपना है वह सच होता,
क्या निश्चय होता तोष मुझे ?
हो सकता है ले वे सपने मैं और अधिक ही पछताता ।
यदि जीवन पुनः बना पाता ।

स्रष्टा भी यह कहता होगा
हो अपनी कृति से असंतुष्ट,
यह पहले ही सा हुआ प्रलय,
यह पहले ही सी हुई सृष्टि।

इस बार किया था जब मैंने
अपनी अपूर्ण रचना का क्षय,
सब दोष हटा जग रचने का
मेरे मन में था दृढ निश्चय।

लेकिन, जब जग में गुण जागे,
तब संग-संग में दोष जगा,
जब पुण्य जगा, तब पाप जगा,
जब राग जगा, तब रोष जगा,

जब ज्ञान जगा, अज्ञान जगा,
पशु जागा, जब मानव जागा,
जब न्याय जगा, अन्याय जगा,
जब देव जगा, दानव जागा।

जग संघर्षों का क्षेत्र बना,
संग्राम छिड़ा, संहार बढ़ा,
कोई जीता, कोई हारा,
मरता - कटता संसार बढ़ा।

मेरी पिछली रचनाओं का
जैसे विकास औ' ह्रास हुआ,
इस मेरी नूतन रचना का
वैसा ही तो इतिहास हुआ।

यह मिट्टी की हठधर्मी है
जो फिर - फिर मुझको छलती है,
सौ बार मिटे, सौ बार बने
अपना गुण नहीं बदलती है।

यह सृष्टि नष्ट कर नवल सृष्टि
रचने का यदि मैं करूँ कष्ट,
फिर मुझे यही कहना होगा
अपनी कृति से हो असंतुष्ट,
'फिर उसी तरह से हुआ प्रलय,
फिर उसी तरह से हुई सृष्टि।'

३१

तुम भी तो मानो लाचारी।

सर्व शक्तिमय थे तुम तब तक,
एक अकेले थे तुम जब तक,
किंतु विभक्त हुई कण - कण में अब वह शक्ति तुम्हारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

गुस्सा कल तक तुमपर आता,
आज तरस मैं तुमपर खाता,
साधक अगणित आँगन में है सीमित भेंट तुम्हारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

पाना - वाना नहीं कभी है,
ज्ञात मुझे यह बात सभी है,
पर मुझको संतोष तभी है,
दे न सको तुम किंतु बनूँ मैं पाने का अधिकारी।
तुम भी तो मानो लाचारी।

३२

मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

नीचे रहती है पावों के,
सिर चढ़ती राजा रावों के
अंबर को भी ढक लेने की यह आज शपथ कर आई है।
मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

सौ बार हटाई जाती है
फिर आ अधिकार जमाती है,
हो हत, विजय यह पाती है,
कोई ऐसा रँग-रूप नहीं जिस पर न अंत को छाई है।
मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

सब को मिट्टीमय कर देगी,
सबको निज में लय कर लेगी,
लो अमर पंक्तियों पर मेरी यह निष्प्रयास चढ़ आई है।
मिट्टी से व्यर्थ लड़ाई है।

३३

आज पागल हो गई है रात।

हँस पड़ी विद्युच्छटा में,
रो पड़ी रिमझिम घटा में,
अभी भरती आह, करती अभी वज्राघात।
आज पागल हो गई है रात।

एक दिन मैं भी हँसा था,
अश्रु - धारा में फँसा था,
आह उर में थी भरी, था क्रोध-कंपित गात।
आज पागल हो गई है रात।

योग्य हँसने के यहाँ क्या,
योग्य रोने के यहाँ क्या,
—क्रुद्ध होने के, यहाँ क्या,
—बुद्धि खोने के, यहाँ क्या,
व्यर्थ दोनों है मुझे हँस-रो हुआ यह ज्ञात।
आज पागल हो गई है रात।

३४

दोनो चित्र सामने मेरे।

(१)

सिर पर बाल बने, घुँघराले,
काले, कड़े, बड़े, बिखरे-से,
मस्ती, आजादी, बेफिकरी,
बेखबरी के हैं सदेसे।

माथा उठा हुआ ऊपर को,
भौंहों में कुछ टेढापन है,
दुनिया को है एक चुनौती,
कभी नहीं झुकने का प्रण है।

नयनों मे छाया-प्रकाश की
आँख - मिचौनी छिड़ी परस्पर,
बेचैनी मे, बेसबरी मे,
लुके छिपे हैं सपने सुदर।

दोनों चित्र सामने मेरे।

(२)

सिर पर बाल कढे कघी से
तरतीबी से, चिकने, काले,
जग की रूढि - रीति ने जैसे
मेरे ऊपर फदे डाले।

भौंहे झुकी हुई नीचे को,
माथे के ऊपर है रेखा,
अकित किया जगत ने जैसे
मुझपर अपनी जय का लेखा।

नयनों के दो द्वार खुले हैं,
समय दे गया ऐसी दीक्षा,
स्वागत सबके लिए यहाँपर
नहीं किसी के लिए प्रतीक्षा।

—

३५

चुपके से चाँद निकलता है।

तरु - माला होती स्वच्छ प्रथम,
फिर आभा बढ़ती है थम थम
फिर सोने का चंदा नीचे से उठ ऊपर को चलता है।
चुपके से चाँद निकलता है।

सोना चाँदी हो जाता है,
जस्ता बनकर खो जाता है,
पल-पहले नभ के राजा का अब पता कहाँ पर चलता है ?
चुपके से चंदा ढलता है।

अरुणाभा, किरणों की माला,
रवि - रथ बारह घोड़ों वाला,
बादल - बिजली औ इंद्रधनुष,
तारक - दल, सुंदर शशिवाला,
कुछ काल सभी से मन बहला, आकाश सभी को छलता है।
वश नहीं किसी का चलता है।

३६

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

आज अधर से अधर मिले हैं,
आज बाँह से बाँह मिली,
आज हृदय से हृदय मिले हैं,
मन से मन की चाह मिली,

चाँद-सितारो, मिलकर गाओ !

चाँद-सितारे मिलकर बोले,
कितनी बार गगन के नीचे
प्रणय-मिलन व्यापार हुआ है,
कितनी बार धरा पर प्रेयसि-
प्रियतम का अभिसार हुआ है !

चाँद सितारे मिलकर बोले।

× × × ×

चाँद - सितारो, मिलकर रोओ !

आज अधर से अधर अलग है,
आज बाँह से बाँह अलग,
आज हृदय से हृदय अलग है,
मन से मन की चाह अलग;

चाँद - सितारो मिलकर रोओ !

चाँद - सितारे मिलकर बोले,

कितनी बार गगन के नीचे
अटल प्रणय के बंधन टूटे,
कितनी बार धरा के ऊपर
प्रेयसि-प्रियतम के प्रण टूटे !

चाँद - सितारे मिलकर बोले ।

———

३७

मैं था, मेरी मधुबाला थी,
अधरों मे थी प्यास भरी,
नयनों में थे स्वप्न सुनहले,
कानों में थी स्वर लहरी,
सहसा एक सितारा बोला, 'यह न रहेगा बहुत दिनों तक!'

मैं था, औ' मेरी छाया थी,
अधरों पर था खारा पानी,
नयनों पर था तम का पर्दा,
कानो में थी कथा पुरानी,
सहसा एक सितारा बोला, 'यह न रहेगा बहुत दिनों तक!'

अनासक्त था मैं सुख-दुख से,
अधरों को कटु-मधु समान था,
नयनों को तम-ज्योति एक-सी,
कानों को सम रुदन-गान था,
सहसा एक सितारा बोला, 'यह न रहेगा बहुत दिनों तक!'

इतने मत उन्मत्त बनो।

जीवन मधुशाला में मधु पी
बनकर तन-मन-मतवाला,
गीत सुनाने लगा झूमकर
चूम-चूमकर मैं प्याला—
शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत उन्मत्त बनो।

इतने मत संतप्त बनो।
जीवन मरघट पर अपने सब
अरमानों की कर होली,
चला राह में रोदन करता
चिता राख से भर झोली—
शीश हिलाकर दुनिया बोली,
पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह,
इतने मत संतप्त बनो।

[आकुल अंतर

इतने मत उत्तप्त बनो।

मेरे प्रति अन्याय हुआ है

ज्ञात हुआ मुझको जिस क्षण,

करने लगा अग्नि-आनन हो

गुरु गर्जन गुरुतर तर्जन,

शीश हिलाकर दुनिया बोली,

पृथ्वी पर हो चुका बहुत यह

इतने मत उत्तप्त बनो।

———

३९

मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार दिवस बीता है,
कितनी बार निशा बीती है,
कितनी बार तिमिर जीता है,
कितनी बार ज्योति जीती है।
मेरा जीवन सबका साखी।

कितनी बार सृष्टि जागी है,
कितनी बार प्रलय सोया है,
कितनी बार हँसा है जीवन,
कितनी बार विवश रोया है।
मेरा जीवन सब का साखी।

कितनी बार विश्व-घट मधु से
पूरित होकर तिक्त हुआ है,
कितनी बार भरा भावों से
कवि का मानस रिक्त हुआ है।
मेरा जीवन सब का साखी।

[आकुल अंतर

कितनी बार विश्व कटुता का
हुआ मधुरता मे परिवर्तन,
कितनी बार मौन की गोदी
मे सोया है कवि का गायन।
मेरा जीवन सब का साखी।

———

४०

तब तक समझूँ कैसे प्यार,

अधरों से जब तक न कराए
प्यारी उस मधुरस का पान,
जिसको पीकर मिटे सदा को
अपनी कटु सज्ञा का ज्ञान,
मिटे साथ मे कटु ससार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

तब तक समझूँ कैसे प्यार,
बाहो मे जब तक न सुलाए
प्यारी, अत रहित हो रात,
चाँद गया कब सूरज आया—
इनके जड क्रम से अज्ञात,
सेज चिता की साज-सँवार,
तब तक समझूँ कैसे प्यार।

तब तक समझूँ कैसे प्यार ,

प्राणों में जब तक न मिलाए

प्यारी प्राणों की झनकार,

खड-खड हो तन की वीणा

स्वर उठ जाएँ तजकर तार,

स्वर-स्वर मिल हों एकाकार,

तब तक समझूँ कैसे प्यार ।

४१

कौन मिलनातुर नहीं है?

आक्षितिज फैली हुई मिट्टी
निरतर पूछती है,
कब कटेगा, बोल, तेरी
चेतना का शाप,
और तू हो लीन मुझमे फिर बनेगा शात?
कौन मिलनातुर नही है?

गगन की निर्बंध बहती वायु
प्रतिपल पूछती है,
कब गिरेगी टूट तेरी
देह की दीवार,
और तू हो लीन मुझमे फिर बनेगा मुक्त?
कौन मिलनातुर नही है?

सर्व व्यापी विश्व का व्यक्तित्व
प्रतिक्षण पूछता है,
कब मिटेगा बोल तेरा
अह का अभिमान,
और तू हो लीन मुझमे फिर बनेगा पूर्ण?
कौन मिलनातुर नही है?

४२

कभी, मन अपने को भी जाँच।

नियति पुस्तिका के पन्नों पर,
मूँद न आँखे, भूल दिखाकर,
लिखा हाथ से अपने तूने जो उसको भी बाँच।
कभी, मन, अपने को भी जाँच।

सोने का ससार दिखाकर,
दिया नियति ने कंकड-पत्थर,
सही, सँजोया कचन कहकर तूने कितना काँच?
कभी, मन, अपने को भी जाँच।

जगा नियति ने भीषण ज्वाला,
तुझको उसके भीतर डाला,
ठीक, छिपी थी तेरे दिल के अंदर कितनी आँच?
कभी, मन, अपने को भी जाँच।

४३

यह वर्षा ऋतु की सन्ध्या है,
मैं बरामदे में कुरसी पर
घिरा अँधेरे से बैठा हूँ
बँगले के स्विच ऑफ सभी कर,
उठे आज परवाने इतने,
कुछ प्रकाश में करना दुष्कर,
नहीं कहीं जा भी सकता हूँ
होती बूँदा-बाँदी बाहर।

उधर कोठरी है नौकर की
एक दीप उसमें बलता है,
सभी ओर से उसमें आकर
परवानों का दल जलता है,
ज्योति दिखाता ज्वाला देता
दिया पतिंगों को छलता है,
नहीं पतिंगों का दीपक के
ऊपर कोई वश चलता है।

है दिमाग में चक्कर करती
एक फ़ारसी की रुबाई,
शायद यह इक़बाल-रचित है
किसी मित्र ने कभी सुनाई,
मेरे मनोभाव का इसमें
अक्स है कुछ-कुछ परछाईं.—
'दिल दीवाना, सिर परवाना,
तन दीपक लौ पर मँडराना,
पथ खोजेगा पंथ सदाना
उस पथ पर जो है मर्दाना।
ज्वाला है खुद तेरे अंदर,
जलना उसमें भीतर निरंतर,
उस ज्वाला में जल क्या पाना
जी, बेगाना, जा बेगाना।'*

आइला बाशानए परवाना मगर,
नगीरी शान मर्दाना मगर,
यके खुद गाह ओते गैरतन बाज़,
बताबे आतिश बेगाना ताके।

४४

यह दीपक है, यह परवाना।

ज्वाल जगी है, उसके आगे
जलनेवालों का जमघट है,
भूल करे मत कोई कहकर,
यह परवानों का मरघट है,
एक नहीं है दोनों मरकर जलना औ' जलकर मर जाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

इनकी तुलना करने को कुछ
देख न, हे मन, अपने अंदर,
वहाँ चिता चिंता की जलती,
जलता है तू शव-सा बनकर,
यहाँ प्रणय की होली में है खेल जलाना या जल जाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

लेनी पड़े अगर ज्वाला ही
तुझको जीवन में, मेरे मन,
तो न मृतक ज्वाला में जल तू
कर सजीव में प्राण समर्पण,
चिता-दग्ध होने से बेहतर है होली में प्राण गँवाना।
यह दीपक है, यह परवाना।

४५

वह तितली है, यह बिस्तुइया।

यह काली कुरूप है कितनी!
वह सुंदर सुरूप है कितनी!
गति से और भयंकर लगती यह, उसका है रूप निखरता।
वह तितली है, यह बिस्तुइया।

बिस्तुइया के मुँह में तितली,
चीख हृदय से मेरे निकली,
प्रकृति पुरी में यह अनीति क्यों, बैठा-बैठा विस्मय करता।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया।

इस अंधेर नगर के अंदर
—दोनों में ही सत्य बराबर,
बिस्तुइया की उदर-क्षुधा औ' तितली के पर की सुंदरता।
वह तितली थी, यह बिस्तुइया,

४६

क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

तेरे जीवन की क्यारी मे
कुछ उगा नहीं, मैंने माना,
पर सारी दुनिया मरुथल है
बतला तूने कैसे जाना ?
तेरे जीवन की सीमा तक
क्या जगती का आँगन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

तेरे जीवन की क्यारी मे
फल-फूल उगे, मैंने माना,
पर सारी दुनिया मधुवन है
बतला तूने कैसे जाना ?
तेरे जीवन की सीमा तक
क्या जगती का मधुवन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

जब तू अपने दुख मे रोता,
दुनिया सुख से गा सकती है,
जब तू अपने सुख मे गाता,
वह दुख से चिल्ला सकती है,
तेरे प्राणो के स्पदन तक
क्या जगती का स्पदन समाप्त ?
क्या तुझ तक ही जीवन समाप्त ?

८७

कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख-सकट आ गिरता
अनदेखी - जानी दुनिया से,
मानव सब कुछ सह लेता है कह, पिछले कर्मों का बधन।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख-सकट आ गिरता
इस देखी - जानी दुनिया से,
मानव यह कह सह लेता है दुख सकट जीवन का शिक्षण।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

कितना दुख सकट आ गिरता
मानव पर अपने हाथों से,
दुनिया न कहीं उपहास करे, सब कुछ करता है मौन सहन।
कितना कुछ सह लेता यह मन !

४८

हृदय सोच यह बात भर गया !

उर मे चुभनेवाली पीडा,
गीत-गध मे कितना अतर !
कवि की आहो मे था जादू काँटा बनकर फूल झर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

यदि अपने दुख मे चिल्लाता,
गगन काँपता, धरती फटती,
एक गीत से कठ रूँधकर मानव सब कुछ सहन कर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

कुछ गीतो को लिख सकते है,
गा सकते हे कुछ गीतो को,
दोनों से था वचित जो वह जिया किस तरह और मर गया।
हृदय सोच यह बात भर गया !

करुण अति मानव का रोदन।

ताज, चीन-दीवार दीर्घ जिन
हाथों के उपहार,
वही सँभाल नहीं पाते है
अपने सिर का भार !
गडे जाते भू मे लोचन ! करुण अति मानव का रोदन।

देव-देश और परी-पुरी जिन
नयनों के वरदान,
जिनमे फैले, फूले, भूले
कितने स्वप्न महान,
गिराते खारे लघु जल कण ! करुण अति मानव का रोदन।

जो मस्तिष्क खोज लेता है
अर्थ गुप्त से गुप्त,
स्रष्टा, सृष्टि और सर्जन का
कहाँ हो गया लुप्त ?
नहीं धरता है धीरज मन ! करुण अति मानव का रोदन।

५०

अकेलेपन का बल पहचान।

शब्द कहाँ जो तुझको टोके,
हाथ कहाँ जो तुझको रोके,
राह वही है, दिशा वही, तू करे जिधर प्रस्थान।
अकेलेपन का बल पहचान।

जब तू चाहे तब मुसकाए,
जब चाहे तब अश्रु बहाए,
राग वही तू जिसमें गाना चाहे अपना गान।
अकेलेपन का बल पहचान।

तन-मन अपना, जीवन अपना,
अपना ही जीवन का सपना,
जहाँ और जब चाहे कर दे तू सब कुछ बलिदान।
अकेलेपन का बल पहचान।

५१

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

मैं दुखी जब-जब हुआ

संवेदना तुमने दिखाई,

मैं कृतज्ञ हुआ हमेशा,

रीति दोनों ने निभाई,

किंतु इस आभार का अब

हो उठा है बोझ भारी ,

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

एक भी उच्छ्‌वास मेरा

हो सका किस दिन तुम्हारा ?

उस नयन में बह सकी कब

इस नयन की अश्रु-धारा ?

सत्य को मूँदे रहेगी

शब्द की कब तक पिटारी ?

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

कौन है जो दूसरे को

दुख अपना दे सकेगा ?

कौन है जो दूसरे से

दुख उसका ले सकेगा ?

क्यों हमारे बीच धोखे

का रहे व्यापार जारी ?

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

क्यों न हम लें मान हम हैं

चल रहे ऐसी डगर पर,

हर पथिक जिसपर अकेला,

दुख नहीं बँटते परस्पर,

दूसरों की वेदना में

वेदना जो है दिखाता,

वेदना से मुक्ति का निज

हर्ष केवल वह छिपाता,

तुम दुखी हो तो सुखी मैं

विश्व का अभिशाप भारी,

क्या करूँ संवेदना लेकर तुम्हारी ?

क्या करूँ ?

५२

उनके प्रति मेरा धन्यवाद,

कहते थे मेरी नादानी
जो मेरे रोने-धोने को,
कहते थे मेरी नासमझी
जो मेरे धीरज खोने को,
मेरा अपने दुख के ऊपर
उठने का व्रत उनका प्रसाद,
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

जो क्षमा नहीं कर सकते थे
मेरी कुछ दुर्बलताओं को,
जो सदा देखते रहते थे
उनमें अपने ही दावों को,
मेरा दुर्बलता के ऊपर
उठने का व्रत उनका प्रसाद,
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

कादरपन देखा करते थे
जो मेरी करुण कहानी में,
वन्ध्यापन देखा करते थे
जो मेरी विह्वल वाणी में,

मेरा नूतन स्वर में उठकर
गाने का व्रत उनका प्रसाद,
उनके प्रति मेरा धन्यवाद।

———

५३

जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

इसपर जो थी लिखी कहानी,
वह अब तुझको याद जबानी,
बार-बार पढकर क्यों इसको व्यर्थ गँवाता जीवन के क्षण।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

इसपर लिखा हुआ हर अक्षर,
जमा हुआ है बनकर 'अक्षर',
किंतु प्रभाव हुआ जो तुझपर उसमे अब करले परिवर्तन।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

यहीं नही यह कथा खतम है,
मन की उत्सुकता दुर्दम है,
चाह रही है देखे आगे,
ज्योति जगी या सोया तम है।
रोक नही तू इसे सकेगा, यह अदृष्ट का है आकर्षण।
जीवन का यह पृष्ठ पलट, मन।

५४

काल क्रम में—

जिसके आगे झंझा रुकते
जिसके आगे पर्वत झुकते—
प्राणों का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है।
उसका भी है कुछ आकर्षण।

नियति नियम में—

जिनका समझा सुकरात नहीं,
जिनका बूझा बुकरात नहीं—
क़िस्मत का प्यारा धन-कंचन
सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,
उसका भी है कुछ आकर्षण।

आत्म भ्रम से—

जिससे योगी ठग जाते हैं,

गुरु ज्ञानी धोखा खाते हैं—

स्वप्नों का प्यारा धन-कंचन

सहसा अपहृत हो जाने पर

जीवन में जो कुछ बचता है,

उसका भी है कुछ आकर्षण।

कालक्रम से नियति नियम में आत्मभ्रम से,

रह न गया जो मिल न सका जो, सच न हुआ जो,

प्रिय जन अपना, प्रिय धन अपना, अपना सपना,

इन्हें छोड़कर जीवन जितना,

इसमें भी आकर्षण कितना!

—

५५

यह नारीपन

तू बंद किए अपने किवाड़
बैठा करता है इंतज़ार,
कोई आए,
तेरा दरवाज़ा खटकाए,
मिलने को बाहें फैलाए,
तुझसे हमदर्दी दिखलाए,
आँसू पोंछे औ' कहे, हाय तू जग में कितना दुखी दीन।

ओ नव चेतन!
तू अपने मन की नारी को
अस्वाभाविक बीमारी को,
उठ दूर हटा,
तू अपने मन का पुरुष जगा,
जो बेशरमाए बाहर जाए,
शोर मचाए हँसे हँसाए,
घेरे उनको जो बैठे हैं मुँह लटकाए, उदासीन।

वह व्यक्ति रहा ,

जो लेट गया मधुबाला की
गोदी में सिर धरकर अपना ,
हो सत्य गया जिसका सहसा
कोई मन का सुंदर सपना ,
दी डुबा जगत की चिंताएँ
जिसने मदिरा की प्याली में
जीवन का सारा रस पाया
जिसने अधरों की लाली में ,
मधुबाला की कंकण-ध्वनि में
जो भूला जगती का क्रंदन ,
जो भूला जगती की कटुता
उसके आँचल से मूँद नयन ,
जिसने अपने सब ओर लिया
कल्पित स्वर्गों का लोक बसा ,
कर दिया सरस उसको जिसने
वाणी से मधु बरसा-बरसा ।

वह व्यक्ति रचा,

जो बैठ गया दिन ढलने पर
दिन भर चलकर सूने पथ पर,
खोकर अपने प्यारे साथी
अपनी प्यारी संपत्ति खोकर,
बस अंधकार ही अंधकार
रह गया शेष जिसके समीप,
जिसके जलमय लोचन जैसे
झंझा से हों दो बुझे दीप,
टूटी आशाओं, स्वप्नों से
जिसका अब केवल नाता है,
जो अपना मन बहलाने को
एकाकीपन में गाता है,
जिसके गीतों का करुण शब्द,
जिसके गीतों का करुण राग
पैदा करने में है समर्थ
आशा के मन में भी विराग।

वह व्यक्ति बना,

जो खड़ा हो गया है तनकर
पृथ्वी पर अपने पटक पाँव,

डाले फूले वक्षस्थल पर
मांसल भुजदंडों का दबाव,
जिसकी गर्दन में भरा गर्व,
जिसके ललाट पर स्वाभिमान,
दो दीर्घ नेत्र जिसके जैसे
दो अंगारे जाज्वल्यमान,
जिसकी क्रोधातुर श्वासों में
दोनों नथने हैं उठे फूल,
जिसकी भौंहों में, मूछों में
हैं नहीं बाल, उग उठे शूल,
दृढ़ दंत-पंक्तियों में जकड़ा
कोई ऐसा निश्चय प्रचंड,
पड़ जाय वज्र भी अगर बीच
हो जाय टूटकर खंड-खंड !

५७

भगा,

जो उर के अंदर आते ही
सुरसा-सा बदन बढ़ाती है,
सारी आशा अभिलाषा को
पल के अंदर खा जाती है,
पी जाती है मानस का रस
जीवन शव-सा कर देती है,
दुनिया के कोने-कोने को
निज क्रंदन से भर देती है,
इसकी संक्रामक वाणी को
जो प्राणी पलभर सुनता है,
वह सारा आत्म-बल खोकर
युग-युग अपना सिर धुनता है,
यह बड़ी अशुचि रुचि वाली है
संतोष इसे तब होता है,
जब जग इसका साथी बनकर
इसके रोदन में रोता है।

वेदना जगा,

जो जीवन के अदय आकर
इस तरह हृदय में जाय व्याप,
बन जाय हृदय होकर विशाल
मानव दुख मापक दंड-मान,
जो जले मगर जिसकी ज्वाला
प्रज्वलित करे ऐसा विरोध,
जो मानव के प्रति किए गए
अत्याचारों का करे शोध,
पर अगर किसी दुर्बलता
वह ताप न अपना रख पाए,
तो अपने बुझने के पहले
औरों में आग लगा जाए,
यह स्वस्थ आग यह स्वस्थ जलन
जीवन में सबको प्यारी हो,
इसमें जल निर्मल होने का
मानव-मानव अधिकारी हो।

५८

भीग रहा है भुवि का आँगन।

भीग रहे हैं पल्लव के दल,
भीग रही हैं आनत डालें,
भीगे तिनकों के खोतों में भीग रहे हैं पंछी अनमन।
भीग रहा है भुवि का आँगन।

भीग रही है महल - झोपड़ी,
सुख - सूखे में महलों वाले,
किंतु झोपड़ी के नीचे हैं भीगे कपड़े, भीगे लोचन।
भीग रहा है भुवि का आँगन।

बरस रहा है भू पर बादल,
बरस रहा है जग पर सुख-दुख,
सब को अपना-अपना, कवि को
सब का ही दुख, सब का ही सुख,
जग-जीवन के सुख-दुःखों से भीग रहा है कवि का तन-मन।
भीग रहा है भुवि का आँगन।

———

५६

तू तो जलता हुआ चला जा।

जीवन का पथ नित्य तमोमय,
भटक रहा इंसान भग - भय,
पल भर सही, पग भर को ही कुछ को राह दिखाजा।
तू तो जलता हुआ चला जा।

जला हुआ तू ज्योति स्वरूप है,
बुझा हुआ केवल कुरूप है,
शेष रहे जब तक जलने को कुछ भी तू जलता जा।
तू तो जलता जा, चलता जा।

जहाँ बनी भावों की क्यारी,
स्वप्न उगाने की तैयारी,
अपने उर की राख - राशि को वहीं - वहीं बिखराजा।
तू तो जलकर भी चलता जा।

मैं जीवन की शका महान।

युग-युग सचालित राह छोड,
युग-युग सचित विश्वास तोड,
मैं चला आज युग - युग सेवित पाखड - रूढि से वैर ठान।
मैं जीवन की शका महान।

होगी न हृदय मे शाति व्याप्त,
कर लेता जबतक नहीं प्राप्त,
जग-जीवन का कुछ नया अर्थ, जग-जीवन का कुछ नया ज्ञान।
मैं जीवन की शका महान।

गहनाधकार मे पॉव वार,
युग नयन फाड, युग कर पसार,
उठ-उठ, गिर-गिरकर वार वार,
मैं खोज रहा हूँ अपना पथ, अपनी शका का समाधान।
मैं जीवन की शका महान।

तन मे ताकत हो तो आओ।

पथ पर पडी हुई चट्टाने,
दृढतर है वीरो की आने,
पहले-सी अब कठिन कहाँ है—ठोकर एक लगाओ।
तन मे ताकत हो तो आओ।

राह रोक है खडा हिमालय,
यदि तुममे दम, यदि तुम निर्भय,
खिसक जायगा कुछ निश्चय है—घूँसा एक लगाओ।
तन मे ताकत हो तो आओ।

रस की कमी नही है जग मे,
बहता नही मिलेगा मग मे,
लोहे के पजे से जीवन की यह लता दबाओ।
तन मे ताकत हो तो आओ।

उठ समय से मोरचा ले।

जिस धरा से यत्न युग-युग
कर उठे पूर्वज मनुज के,
हो मनुज संतान तू उसपर पड़ा है, शर्म खाले।
उठ समय से मोरचा ले।

देखता कोई नहीं है
निर्बलों की यह निशानी,
लोचनों के बीच आँसू औ' पगों के बीच छाले।
उठ समय से मोरचा ले।

धूलि धूसर वस्त्र मानव—
देह पर फबते नहीं है,
देह के ही रक्त से तू देह के कपड़े रँगाले।
उठ समय से मोरचा ले।

तू कैसे रचना करता है ?

तू कैसी रचना करता है ?

अपने आँसू की बूँदों में—

अविरल आँसू की बूँदो में,

विह्वल आँसू की बूँदों में,

कोमल आँसू की बूँदों में,

निर्मल आँसू की बूँदों में—

लेखनी डुबाकर बार-बार,

लिख छोटे-छोटे गीतों को

गाता है अपना गला फाड़,

करता इनका जग मे प्रचार।

इनको ले बैठ अकेले मे

तुझसे बहुतेरे दुखी-दीन

खुद पढते है, खुद सुनते हैं,

तुझसे हमदर्दी दिखलाते,

अपनी पीडा को दुलराते,

कहते हैं, 'जीवन है मलीन,

यदि बचने का कोई उपाय
तो वह केवल है एक मरण ।'

तू ऐसे अपनी रचना कर,
तू ऐसी अपनी रचना कर।
जग के आँसू के सागर मे—
जिसमे विक्षोभ छलकता है,
जिसमे विद्रोह बलकता है,
जय का विश्वास ललकता है,
नवयुग का प्रात झलकता है—
तू अपना पूरा कलम डुबा,
लिख जीवन की ऐसी कविता,
गा जीवन का ऐसा गायन,
गाए सँग में जग का कण-कण।

जो इसको जिह्वा पर लाए,
वह दुखिया जग का बल पाए,
दुख का विधान रचने वाला,
चाहे हो विश्व - नियता ही,

इसको सुनकर थर्रा जाए।
घोषणा करे इसका गायक,
'जीवन है जीने के लायक,
जीवन कुछ करने के लायक,
जीवन है लड़ने के लायक,
जीवन है मरने के लायक,
जीवन के हित बलि कर जीवन।'

६४

पशु पर्वत पर चढोगे ।

चोटियाँ इस गिरि गहन की
बात करती है गगन से,
और तुम सम भूमि पर चलना अगर चाहो गिरोगे ।
पशु पर्वत पर चढोगे ।

तुम किसी की भी कृपा का
बल न मानोगे सफल हो ?
औ' विफल हो दोष अपना सिर न औरों के मढोगे ?
पशु पर्वत पर चढोगे ।

यह इरादा नप अगर सकता
शिखर से उच्च होता,
गिरि झुकेगा ही इसे ले जबकि तुम आगे बढोगे ।
पशु पर्वत पर चढोगे ।

६५

गिरि शिखर , गिरि शिखर, गिरि शिखर !

जबकि ध्येय बन चुका,
जबकि उठ चरण चुका,
स्वर्ग भी समीप देख—मत ठहर, मत ठहर, मत ठहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

संग छोड सब चले,
एक तू रहा भले,
किंतु शून्य पथ देख—मत सिहर, मत सिहर, मत सिहर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

पूर्ण हुआ एक प्रण,
तन मगन, मन मगन,
कुछ न मिले छोडकर—पत्थर, पत्थर, पत्थर !
गिरि शिखर, गिरि शिखर, गिरि शिखर !

-यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

तूने मदिरा की धारा पर
स्वप्नों की नाव चलाई है,
तूने मस्ती की लहरों पर
अपनी वाणी लहराई है।
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

तूने आँसू की धारा में
नयनों की नाव डुबाई है,
तूने करुणा की सरिता की
डुबकी ले थाह लगाई है।
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

अब स्वेद-रक्त का सागर है,
उस पार तुझे ही जाना है,
उस पार बसी है जो दुनिया
उसका संदेश सुनाना है।
अब देख न डर, अब देर न कर,
तूने क्या हिम्मत पाई है!
यह काम कठिन तेरा ही था,
यह काम कठिन तेरा ही है।

६७

बजा तू वीणा और प्रकार।

कल तक तेरा स्वर एकाकी,
मौन पड़ी थी दुनिया बाकी,
तेरे अंतर की प्रतिध्वनि थी तारों की झनकार।'
बजा तू वीणा और प्रकार।

आज दबा जाता स्वर तेरा,
आज कँपा जाता कर तेरा,
बढ़ता चला आ रहा है उठ जग का हाहाकार।'
बजा तू वीणा और प्रकार।

क्या कर की वीणा धर देगा,
या नूतन स्वर से भर देगा,
जिसमें होगा एक राग तेरा, जग का चीत्कार।'
बजा तू वीणा और प्रकार।

यह एक रश्मि—

पर छिपा हुआ है इसमें ही
ऊषा बाला का अरुण रूप,
दिन की सारी आभा अनूप,
जिसकी छाया में सजता है
जग राग-रंग का नवल साज।

यह एक रश्मि!

यह एक विंदु—

पर छिपा हुआ है इसमें ही
जल-श्यामल मेघों का वितान,
विद्युत बाला का वज्र गान,
जिसको सुनकर फैलाता है
जग पर पावस निज सरस राज।

यह एक विंदु!

वह एक गीत—

जिसमें जीवन का नवल वेश,
जिसमें जीवन का नव संदेश,
जिसको सुनकर जग वर्तमान
कर सकता नवयुग में प्रवेश,
किस कवि के उर में छिपा आज?

वह एक गीत!

६६

जब जब मेरी जिह्वा डोले।

स्वागत जिनका हुआ समर में,
वक्षस्थल पर, सिर पर, कर में,
युग-युग से जो भरे नहीं है मानव के घावों को खोले।
जब जब मेरी जिह्वा डोले।

यदि न बन सके उनपर मरहम,
मेरी रसना दे कम से कम
इतना तो रस जिसमें मानव अपने इन घावों को धोले।
जब जब मेरी जिह्वा डोले।

यदि न सके दे ऐसे गायन,
बहले जिनको गा मानव-मन,
शब्द करे ऐसे उच्चारण,
जिनके अंदर से इस जग के शापित मानव का स्वर बोले।
जब जब मेरी जिह्वा डोले।

७०

तू एकाकी तो गुनहगार।

अपने प्रति होकर दयावान
तू करता अपना अश्रु पान,
जब खडा माँगता दग्ध विश्व तेरे नयनों की सजल धार।
तू एकाकी तो गुनहगार।

अपने अंतस्तल की कराह
पर तू करता है त्राहि-त्राहि,
जब ध्वनित धरणि पर अंबर मे चिर-विकल विश्व का चीत्कार।
तू एकाकी तो गुनहगार।

तू अपने मे ही हुआ लीन,
बस इसीलिए तू दृष्टिहीन,
इससे ही एकाकी-मलीन,
इससे ही जीवन - ज्योति - क्षीण,
अपने से बाहर निकल देख है खडा विश्व बाहे पसार।
तू एकाकी तो गुनहगार।

७१

गाता विश्व व्याकुल राग।

हैं स्वरों का मेल छूटा,
नाद उखड़ा ताल टूटा,
लो रुदन का कंठ फूटा,
सुप्त युग-युग वेदना सहसा पड़ी है जाग।
गाता विश्व व्याकुल राग।

वीणा के निज तार कसकर
और अपना साधकर स्वर
गान के हित आज तत्पर
तू हुआ था, किंतु अपना ध्येय गायक त्याग।
गाता विश्व व्याकुल राग।

उँगलियाँ तेरी रुकेंगी,
बज नहीं वीणा सकेगी,
राग निकलेगा न मुख से,
यत्न कर साँसे थकेंगी,
करुण क्रंदन में जगत के आज ले निज भाग।
गाता विश्व व्याकुल राग।

बच्चन की

अन्य प्रकाशित रचनाओं का विवरण

लीडर प्रेस, इलाहाबाद

एकांत संगीत

('आकुल अंतर' के ठीक पहले की रचना)

यह कवि की १९३८-३९ में लिखित एक सौ गीतों का सग्रह है। देखने में यह गीत 'निशा निमत्रण' के गीतों की शैली में प्रतीत होते हैं, परतु पद, पक्ति, तुक, मात्रा आदि में अनेक स्थानो पर स्वतत्रता लेकर कवि ने इनकी एक-रूपता में भी विभिन्नता उत्पन्न की है।

कवि ने जिस एकाकीपन का अनुभव निशा निमत्रण मे मुखरित किया था उसकी यहाँ चरम सीमा पहुँच गई है। 'कल्पित साथी' भी साथ मे नहीं है। कवि के हृदय में वेदना इतनी घनीभूत हो गई है कि उसे बताने के लिए वातावरण की सहायता की भी आवश्यकता नहीं होती। गीतो का क्रम रचना-क्रम के अनुसार होने से कवि की भावनाओं का जैसा स्वाभाविक चित्र यहाँ आपको मिलेगा वैसा और किसी कृति में नहीं।

कवि ने जीवन के एकात मे क्या देखा, क्या अनुभव किया, क्या सोचा, यदि इसे जानना चाहते हैं तो एकात सगीत को लेकर एकात में बैठ जाइए।

दूसरा सस्करण नए ठाट-बाट से छपकर तैयार है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

निशा निमंत्रण

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३७-३८ में लिखित एक कहानी और एक सौ गीतों का सग्रह है। 'निशा निमत्रण' के गीतों से बच्चन की कविता का एक नया युग आरभ होता है। १३-१३ पक्तियों मे लिखे गए ये गीत विचारों की एकता, गठन और अपनी सपूर्णता में अग्रेजी के सॉनेट्स की समता करते है।

'निशा निमत्रण' के गीत सायकाल से आरभ होकर प्रातःकाल समाप्त होते हैं। रात्रि के अधकारपूर्ण वातावरण से अपनी अनुभूतियों को रजित कर बच्चन ने गीतो की जो शृखला तैयार की है वह आधुनिक हिंदी साहित्य के लिए सर्वथा मौलिक वस्तु है। गीत एक दूसरे से इस प्रकार जुडे हुए हैं कि यह सौ गीतों का सग्रह न होकर सौ गीतों का एक महागीत है, शत दलों का एक शतदल है।

इसका सौंदर्य देखना हो तो शीघ्र ही अपनी प्रति मॅगा लीजिए।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

मधुशाला

(पाँचवा संस्करण)

यह कवि की १९३३-३४ में लिखित १३५ रुबाइयों का संग्रह है हाला, प्याला, मधुबाला और मधुशाला के केवल चार प्रतीकों और इन्हीं से मिलने वाले कुछ गिनती के तुकों को लेकर बच्चन ने अपने कितने भावों और विचारों को इन रुबाइयों में भर दिया है इसे वे ही जानते हैं जिन्होंने कभी मधुशाला उनके मुंह से सुनी या स्वयं पढ़ी है। आधुनिक खड़ी बोली की कोई भी पुस्तक मधुशाला के समान लोकप्रिय नहीं हो सकी इसमें तनिक भी अतिशयोक्ति नहीं है। अब समालोचकों ने स्वीकार कर लिया है कि मधुशाला में सौंदर्य के माध्यम से क्रांति का जोरदार संदेश दिया गया है।

कवि ने इसे रुबाइयात उमर ख़ैयाम का अनुवाद करने के पश्चात् लिखा था इस कारण से उसके बाहरी रूपक से प्रभावित अवश्य हुए हैं परंतु यह भीतर से सर्वथा स्वानुभूत और मौलिक रचना है जिसकी प्रतिध्वनि प्रत्येक भारतीय युवक के हृदय से होती है।

भाव, भाषा, लय और छंद एक दूसरे के इतने अनुरूप बन पड़े हैं कि हिंदी से अपरिचित व्यक्ति भी उसका वैसा ही आनंद लेते हैं जैसा कि हिंदी से सुपरिचित व्यक्ति। आज ही इसे लेकर बैठ जाइए और इसकी मस्ती से झूम उठिए।

—लीडर प्रेस, प्रयाग।

मधुबाला

(चौथा संस्करण)

यह कवि की १६३४-३५ में लिखित 'मधुबाला' 'मालिक-मधुशाला', ''मधुपायी, 'पथ का गीत', 'सुराही', 'प्याला', 'हाला' 'जीवन तरुवर', 'प्यास', 'बुलबुल', 'पाटल माल' 'इस पार-उस पार', 'पाँच पुकार', ''पगध्वनि' और 'आत्म परिचय' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

मधुशाला के पश्चात लिखे गए इन नाटकीय गीतों में मधुबाला और मधुपायी ही नहीं प्याला, हाला और सुराही आदि भी सजीव होकर अपना अपना गीत गाने लगे हैं। कवि को मधुशाला का गुणगान करने की आवश्यकता नहीं रह गई, वह स्वय मस्त होकर आत्म-गान करने लगी है। इन गीतों में आप पाएँगे विचारों की नवीनता, भावों की तीव्रता, कल्पना की प्रचुरता और सुस्पष्टता, भाषा की स्वाभाविकता, छदों का स्वछद सगीतात्मक प्रवाह और इन सब के ऊपर वह सूक्ष्म शक्ति जो प्रत्येक हृदय को स्पर्श किए बिना नहीं रह सकती कवि का व्यक्तित्व। इन्हीं गीतों के लिए प्रेमचद जी ने लिखा था कि इनमें बच्चन का अपना व्यक्तित्व है, अपनी शैली है, अपने भाव हैं और अपनी फिलासफ़ी है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

मधु कलश

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की १९३५-३६ में लिखित 'मधुकलश', 'कवि की वासना', 'सुषमा', 'कवि की निराशा', 'री हरियाली', 'कवि का गीत', 'पथ भ्रष्ट', 'कवि का उपहास', 'माँझी', 'लहरों का निमत्रण', 'मेघदूत के प्रति' और 'गुलहज़ारा' शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

आधुनिक समय में समालोचकों द्वारा बचन की कविताओं का जितना विरोध हुआ है सभवतः उतना और किसी कवि का नहीं हुआ। उन्होंने अपने विरोधियो की कटु आलोचनाओं का उत्तर कभी नहीं दिया परतु उससे जो उनकी मानसिक प्रतिक्रिया हुई है उसे अवश्य काव्य मे व्यक्त किया है। उत्तर प्रत्युत्तर में जो बात कटु हो जाती वही कविता मे किस प्रकार मधुर हो गई है, 'मधु कलश' की अधिकाश कविताएँ इसका प्रमाण हैं। कवि ने चारो ओर के आक्रमण के बीच किन भावनाओं और विचारों से अपनी सत्ता को स्थिर रक्खा है उसे देखना हो तो आप 'मधु कलश' की कविताएँ पढिए। इनके अन्दर साहित्य के आलोचकों को ही नहीं जीवन के आलोचकों को भी उत्तर है, कवि के लिए ही नही मानवता के लिए भी सदेश है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद

तेरा हार

(तीसरा संस्करण)

यह कवि की सन १६२९-३० में लिखित, स्वीकृत, आगे, नैराश्य, कीर, झडा, बदी, बदी मित्र, कोयल, मध्याह्न, चुबन, मधुकर, दुख में, दुखों का स्वागत, आदर्श प्रेम, तुमसे, मधुरस्मृति, दुखिया का प्यार, कलियों से, विरह-विषाद, मूक प्रेम, उपहार, मेरा धर्म, सकोच, प्रेम का आरभ, आत्म सदेह, जन्म दिवस शीर्षक कविताओं का सग्रह है।

यद्यपि यह बच्चन की सर्व प्रथम कृति है, फिर भी सभी पत्र-पत्रिकाओं ने इसकी प्रशसा की है। बच्चन की कविताओं का क्रम विकास समझने के लिए इसे देखना बहुत आवश्यक है। किसी कवि की अतिम कृतियाँ ही उसकी उच्चता का आभास देती हैं, परतु कवि ने कहाँ से प्रारभ करके वह उच्चता प्राप्त की इसे उसकी आरभिक रचनाएँ ही बतला सकती हैं।

'विश्वमित्र' ने इसके विषय मे लिखा था, 'इसके रचयिता महोदय का नाम यद्यपि हम हिंदी में प्रथम बार देख रहे हैं तथापि कविताएँ पढने से मालूम होता है कि वे इस कला मे सिद्ध-हस्त हैं। कविताएँ सुदर और सरस हैं और भाव यथेष्ट परिपक्व हैं।'

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।

खैयाम की मधुशाला

(दूसरा संस्करण)

यह फिट्ज़जेराल्ड कृत रुबाइयात उमर ख़ैयाम का पद्यात्मक हिंदी रूपातर हैं जिसे कवि ने सन् १९३३ में उपस्थित किया था। मूल पुस्तक के विषय में कुछ कहने की आवश्यकता नहीं है। इसकी गणना ससार की सर्वोत्कृष्ट कृतियों मे है। अनुवाद में प्रायः मूल का आनद नहीं आता, परतु बच्चन के अनुवाद में कहीं आपको यह कमी न दीख पड़ेगी। वे एक शब्द के स्थान पर दूसरा शब्द रखने के फेर में नहीं पड़े। उन्होंने उमर ख़ैयाम के भावों को ही प्रधानता दी है। इसी कारण उनकी यह कृति मौलिक रचना का आनद देती है।

स्वर्गीय प्रेमचद ने जनवरी '३६ के 'हस' में पुस्तक की आलोचना करते हुए लिखा था कि 'बच्चन ने उमर ख़ैयाम की रुबाइयों का अनुवाद नहीं किया, उसी रग में डूब गए हैं।' हिंदी में पुस्तक के और अनुवाद भी हैं पर 'लीडर' ने स्पष्टतया लिखा था कि—
Bachchan has a great advantage over many translators in that he himself feels, for all we know very much like the poet astronomer of Hishapue

दूसरे सस्करण मे मूल अग्रेजी अनुवाद भी दिया गया है।

—लीडर प्रेस, इलाहाबाद।